डा० (श्रीमती) कुसुम चतुर्वेदी

शिक्षक की नैतिक जवाबदेही

उपभोक्ता संस्कृति के सर्वग्रासी संक्रमण के इस युग में जहाँ सम्पत्ति और सत्ता का समग्रीकरण, संस्कृति का विकृतिकरण, राजनीति का अपराधीकरण तथा सम्बन्धों के बाजारीकरण के कारण सम्पूर्ण मानव प्रजाति का विश्वव्यापी व्याकरण विशृंखलित होता चला जा रहा है वहाँ शिक्षा का परिदृश्य कैसे पृथक तथा असंपृक्त हो सकता है? किन्तु यह कदापि विस्मरण योग्य नहीं कि शिक्षा बाल व्यक्तित्व में एक विशेष प्रकार की आत्मीयता एवं आस्था के संचरण का साधन है। अन्य शब्दों में व्यक्तित्व की सतत पुनर्रचना, व्यक्तित्व को गढ़ने की अविराम रूपरेखा जिसमें अनथक प्रयत्न एवं संयम की आवश्यकता होती है, शिक्षा के माध्यम से ही सम्भव है तथा इस सम्भावना–सिद्धि में प्रमुख अभिकर्त्ता के रूप में शिक्षक की जवाबदेही असंदिग्ध है।

जवाबदेही का संप्रत्यय वस्तुतः नीतिशास्त्रीय और नैतिक है जो स्वयम् में **'नयनात्रीतिरुच्यते'** तथा **'कर्तव्यमेवं न कर्तव्यमित्यात्मको यो धर्मः सानीतिः'** एवं **'श्रेय'** जैसे प्रमुख प्रतिपाद्यों को समाहित किये हुए हैं। इस दृष्टि से जवाबदेही को परिभाषित करते हुए कहा जा सकता है : **नैतिक दृष्टि से अपने शिक्षार्थी समुदाय के प्रति, उस संगठन के प्रति जिसमें सेवा रत हैं तथा अंततोगत्वा समाज के प्रति श्रेय के अंतिम लक्ष्य के प्रति शिक्षकों द्वारा कर्तव्यों का निर्वहन।**

शिक्षक की जवाबदेही के सम्बन्ध में कुछ प्रचलित धारणाएँ विचारणीय हैं – प्रथम - जबकि समाज के सभी क्षेत्रों में जवाबदेही लुप्तप्राय है, ऐसी स्थिति में मात्र शिक्षक से उसकी आशा कहाँ तक उचित है? द्वितीय – शिक्षा एक सतत चक्राकार प्रक्रिया है जिसके सुचारु संचालन में मात्र शिक्षक ही एक घटक नहीं है, इस प्रक्रिया और प्रणाली में नीति निर्माता, उच्च प्रशासन, सामुदायिक प्रतिनिधि, राजनेता, विद्यालय व्यवस्थापक, अभिभावक एवं स्वयम् शिक्षार्थी की भी प्रत्यक्ष और परोक्ष जवाबदेही कम महत्व नहीं रखती। इन समस्त महत्वपूर्ण घटकों के अतिरिक्त शैक्षिक उद्देश्यों के निर्धारण, पाठ्यक्रम निर्माण, पाठ्यपुस्तक के प्रचलन, प्रवेश-नीति निर्धारण एवं उत्तीर्ण होने के मानदण्डों आदि के सम्बन्ध में शिक्षक की भूमिका के प्रति अस्वीकृति का भाव एवं मात्र परीक्षा परिणामों पर अध्यापकीय उपलब्धियों का आकलन – ये समस्त पक्ष भी जवाबदेही को निषेधात्मक रूप से प्रभावित करते हैं। तृतीय– टैक्नोलॉजी के बढ़ते प्रभाव के कारण शिक्षक की भूमिका विवादों के घेरे में है किन्तु इस सम्बन्ध मे मेरा अभिमत यह है कि टैक्नोलॉजी साधन मात्र है, साध्य नहीं। वस्तुतः यह संवाद में सहायक हो सकती है, संवेदनाओं की वाहिका नहीं हो सकती। पुनः ज्ञान एक आयामी नहीं होता, तदर्थ परस्पर अन्त:क्रिया का महत्व होता है। इसी आधार पर ब्राउन जैसे महान विचारक ने डिस्टेन्स लर्निंग की विफलता के विषय में स्वीकार किया कि **'यह कभी भी उस शिक्षा प्रणाली का स्थान नहीं ले सकती जिसमें लोग इकट्ठा होकर शैक्षिक ज्ञान और योग्यताएँ हासिल करते हैं।'**

स्पष्ट है कि टैक्नोलॉजी के पार्ट पर तो यह सुनिश्चित है कि यह शिक्षक की स्थानापन्न नहीं हो सकती, किन्तु चूंकि समाज के लिये जवाबदेही एक अनस्तित्वपूर्ण संप्रत्यय बनती चली जा रही है इसलिये यथास्थितवाद का पोषक हो जाना अथवा बहती गंगा में हाथ धोने की मानसिकता का शिकार हो जाना – यह स्वयम् के प्रति अनास्थाभाव का द्योतक है। इसी अनास्था और नास्तिकता के वशीभूत शिक्षक शिक्षक न रह कर अनुबन्धित और व्यावसायिक कर्मचारी मात्र रह जाता है जिसका लक्ष्य मात्र ट्यूशन, मात्र अपने अधिकारों के लिये वार्ता, हड़ताल और प्रदर्शन के प्रति आसक्ति के अतिरिक्त जवाबदेही के नाम पर कुछ भी नहीं रह जाता, परिणाम यह होता है कि शिक्षार्थी आस्था की जिस थाती को लेकर स्कूल/कॉलेज आता है, उसे खोकर स्वेच्छाचारिता की आसुरी सम्पदा का स्वामी बनकर लौटता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अत: आवश्यकता है आत्मावलोकन, आत्मचिन्तन और आत्मविश्लेषण की। अध्यापकीय सेवा के इस परिधान के तकाजे के अधीन इस तथ्य को हृदयंगम करने की कि अध्यापक का मूल अर्थ केवल ले जाने वाला नहीं है, अधि लगा है उसमें, जिसका अर्थ है किसी विशेष जगह ले जाने वाला, किसी अधिष्ठान तक पहुँचाने वाला, एक निश्चित लक्ष्य तक ले जाने वाला और ले ही जाने वाला नहीं उसे सम्पन्न करने वाला, प्रतिष्ठित करने वाला, तदर्थ आवश्यकता है अध्यापक स्वयम् सम्पन्न हो, स्वयम् प्रतिष्ठित हो तभी नैतिक जवाबदेही की सम्भावना की सिद्धि सम्भव है। इस दृष्टि से शिक्षक की विशेष रूप से शिक्षार्थी के प्रति प्रमुखतया तीन नैतिक प्रतिबद्धताएँ है:

वैचारिक निष्ठा :

तदर्थ शिक्षक को मात्र ज्ञान का संप्रेषक होना ही पर्याप्त नहीं है वरन् उसका प्रज्ञावान होना आवश्यक है। वह जो कुछ शिक्षार्थी को देना चाहता है उसे उस विषय का पूर्ण निष्णात, पूर्ण ज्ञाता होना चाहिये, किन्तु प्रज्ञावान केवल बुद्धिमान व्यक्ति नहीं है। प्रज्ञावान व्यक्ति वह है जो वस्तुओं, व्यक्तियों और घटनाओं आदि के तथ्यों को उचित रूप में अध्ययन कर उनकी व्याख्या करने में सक्षम हो, जो अपने शिष्य के गूढ़ से गूढ़, जटिल से जटिल प्रश्नों का अत्यन्त धैर्य के साथ विधिवत समाधान प्रस्तुत करने में सक्षम हो, वह जिस विषय का भी संस्पर्श करे उसे पराकाष्ठा तक पहुँचाने की सामर्थ्य उसमें हो। आशय यह कि शिक्षक के व्यक्तित्व में ज्ञान का गाम्भीर्य इतना सशक्त होना चाहिये कि विद्यार्थी श्रद्धावनत होने के के लिये विवश हो जाये। गीता के आठयें अध्याय में एक साथ अनेक प्रश्नों की बौछार और गीता के शिक्षक श्रीकृष्ण द्वारा अत्यन्त धैर्य के साथ दिये गये उत्तर उनकी ज्ञान-गरिमा की प्रतिष्ठा के परिचायक हैं। ये उत्तर वस्तुत: शिक्षक की जवाबदेही के उस नैतिक पक्ष का प्रतिनिधित्व करते हैं कि जिसके पास देने को है, वह देने के लिये विवश है, इस दृष्टि से शिक्षक-शिक्षार्थी सम्बन्ध माँ और बालक के सम्बन्ध के समकक्ष हैं जिसे गोपीनाथ कविराज ने महाभाव की संज्ञा से संज्ञापित किया है। यह सम्बन्ध वस्तुत: त्याग के स्तर का नहीं वरन् प्रेम के स्तर का है, क्योंकि त्याग में तो द्वैत है, प्रेम में अद्वैत होता है।

इस प्रकार प्रेमाधारित वैचारिक निष्ठा ही नैतिक जवाबदेही का पर्याय हो सकती है और यह मात्र अध्यापन की औपचारिकता से संभव नहीं होगा, स्वयम गहराई में जाना होगा, अपने शिक्षार्थी को **'गहरे पानी पैठ'** की हद तक लेकर जाना होगा, ऐसी लगन और गहराई में जाने की साध जो पैदा कर सके, वही अध्यापक है। ऐसे अध्यापक ही भगवान बुद्ध की भाँति **आत्मदीपोभव** का संदेश दे सकते हैं।

भाव निष्ठा :

इयान पियर्सन जैसे लोग वह घोषणा कर रहे हैं कि भविष्य टैक्नोलॉजी के हाथ में है, दूसरी ओर आत्म हत्याओं की संख्या में वृद्धि, अध्यात्म की शरण में जाकर भावनात्मक और मानसिक समस्याओं से निजात पाने की प्रवृति, प्रबन्धन में इमोशनल एवं स्प्रिच्युल कोन्शियेन्स जैसी अवधारणाओं का पढ़ाया जाना, शिक्षा एवं प्रबन्धन तक के पाठ्यक्रम में पतंजलि योगदर्शन के सैद्धान्तिक एवं व्यावहारिक पक्षों के अध्ययन की अनुशंसा, साइबर दुकानों के समानान्तर योग, नेचुरोपेथी, ताई ची और रेकी जैसे उपक्रम, आध्यात्मिक संगीत और कैसेट के एक पृथक बाजार का निर्माण – टैक्नोलॉजी के समानान्तर ये समस्त प्रावधान इस तथ्य के द्योतक हैं कि आदमी की प्राथमिकता डिजिटल क्रान्ति नहीं है। नई टैक्नोलॉजी से व्युत्पन्न सुखबोध प्रत्येक रोग का इलाज नहीं है, आदमी की बुनियादी जरुरत भावनात्मक है।

गाँधी जी कहा करते थे कि शिक्षा का अर्थ मात्र अक्षर ज्ञान नहीं है, अक्षर ज्ञान से आशय मनुष्यत्व से भी नहीं है, मनुष्य का मनुष्यत्व सत्य, अहिंसा, प्रेम, दया, क्षमा, शौर्य आदि उच्च भावनाओं के साथ एक-रूप होने में है। शिक्षा के परिप्रेक्ष्य में भावनाओं की शुद्धि और उनका विकास शरीर के पोषण के ही साथ संयुक्त होना चाहिये। भाव संशुद्धि और विकास की दृष्टि से शिक्षा के दायित्व के रूप में शिक्षा के मूल घटक परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका है क्योंकि कुटुम्ब में ही समाज सेवा का बीज निहित है। पुन: इस दायित्व का निर्वहन शिक्षा की जवाबदेही है, किन्तु प्रथम दृष्टया अत्यधिक आकर्षित प्रतीत होने वाली **''ऑन लाइन डायग्नोसिस''** और **''डिस्टेन्स लर्निंग''** जैसी शैक्षिक अवधारणाओं से यह सम्भव नहीं है, क्योंकि शिक्षा सम्बन्धी ये अवधारणाएँ जीवन को देखने की मौलिक दृष्टि प्रदान करने में नितान्त असमर्थ है। इनके दुष्प्रभाव ने शिक्षा में रुग्ण और विक्षिप्त व्यक्तित्व को जन्म दिया है, जो हृदयहीन और भाव शून्य है, जिसके पास मनुष्यता नहीं, करुणा नहीं, प्रेम का कोई झरना नहीं, प्राणों की कोई ऊर्जा नहीं, जो मात्र हिसाब लगाने वाली कम्प्यूटर मशीन के समान जीवन का बोझा उठाने में अपना अभ्युदय और नि:श्रेयस स्वीकार कर स्वयम् को धन्य समझता है। इस दृष्टि से अपने विद्यार्थियों के प्रति शिक्षक की भावनात्मक प्रतिबद्धता का विशेष महत्व है, तदर्थ आवश्यकता है :

शिक्षक द्वारा अपने पूर्वाग्रहों, आशाओं, आशंकाओं को आरोपित करने के स्थान पर शिक्षार्थी को समझने की, उसकी भावनाओं को समझने की। प्रभुत्व प्राप्त करने की जटिल तथा भयंकर वासना के अधीन दुराग्रह पूर्वक आत्मतुष्टीकरण हेतु

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अपने छात्र-छात्राओं का उपयोग करनेवाला और इसी को गुरु सेवा का पर्याय माननेवाला शिक्षक, शिक्षक होने योग्य नहीं वरन् उसका तो संवेदनात्मक स्तर पर छात्र के प्रति अनन्य प्रेम होना चाहिये। गीता अध्याय दस में शिक्षक श्रीकृष्ण के शिक्षार्थी के प्रति अतिशय प्रेम के समान, जिसकी पराकाष्ठा की घोषणा "**पाण्डवानाम् धनंजय**" के कथन में दृष्टव्य है, जिसके लिये विनोबा कहते हैं कि इससे अधिक प्रेम का पागलपन और प्रेमोन्मत्तता कहाँ होगी? ग्यारहवाँ अध्याय इसी प्रीति का प्रसाद रूप है। यह निश्चित है जहाँ प्रेम होगा वहाँ अहिंसा, धैर्य, करुणा, क्षमा आदि की भावनायें स्वमेव प्रतिष्ठित हो जायेगी। हमारी शिक्षा की भारतीय संकल्पना परस्पर परायणता "**बौधयन्तः परस्परं**" की भावना पर आधारित है। हमारी प्राचीन परम्परा तो "**तेजस्विनावधीतमस्तु**" की परम्परा है जिसमें शिक्षक शिक्षार्थी के अध्ययन के स्थान पर हम दोनों (शिक्षक और शिक्षार्थी) का अध्ययन तेजस्वी बने, ऐसी कामना की गई है। शिक्षा की यह विधायक धारणा शिक्षक के अहं और प्रभुत्व की भावना को नियंत्रित कर स्वस्थ परम्परा का पोषण करती है। शिक्षक द्वारा अनुगमित इस प्रकार की सहयोगात्मक अभिवृत्ति छात्र में आस्था का संचार कर उसकी असीम सम्भाव्यताओं को उजागर करती है, ऐसे शिक्षक के प्रति ही छात्र सहज समर्पित हो अर्जुन के समान कह सकता है–

नष्टोमोहः स्मृतिर्लब्धा त्वत्प्रसादान्मयाच्युत
स्थितोऽस्मि गत संदेहः करिष्ये वचनम् तव ।। १८/७३

व्यवहार निष्ठा :

विनोबा "**शिक्षा प्रचार**" में कहते हैं कि "**गीता में प्रायः ज्ञान और विज्ञान** दो शब्द साथ-साथ आते हैं। ज्ञान का अर्थ है आत्मज्ञान जो बुद्धिगत है, वह जब इन्द्रियों में उतरता है, जीवन में पग जाता है तो विज्ञान बन जाता है। विज्ञान का अर्थ है पगा हुआ ज्ञान, परनिष्ठित ज्ञान। ..... विवेक की सहायता से ज्ञान विज्ञान बनता है। जब तक पूरा विवेक जाग्रत न हो ज्ञानानुरूप जीना सम्भव नहीं होगा। जब तक ज्ञान आचरण में नहीं उतरता उसे विज्ञान का रूप नहीं मिलेगा।"

भारत में प्राचीन काल से अर्वाचीन काल तक आचार्यों की परम्परा चली आयी है। संस्कृत का "**आचार्य**" शब्द स्वयम् बोलता है – आचिरति आचारम् कारयति – जो स्वयम् आचरण करता है और दूसरों से कराता है वह है आचार्य। इस संकल्पना के अधीन हमारे यहाँ अध्यापक स्वयम् में एक संस्था था, किसी संस्था के अधीन नहीं था। उस अध्यापक का कार्य मात्र वेतन प्राप्त करना नहीं था वरन् उसके समक्ष तो शिक्षार्थी सहित सामाजिक चित्त शुद्धि के आयोजन एवं उत्तरोत्तर उन्नयन का सर्वाधिक महत् दायित्व था। आज के शिक्षक को ऐसी ही शान्तिमय क्रान्ति का अग्रदूत बनकर "**पथीकृत विचक्षणः**" बन शिक्षार्थी के समक्ष उदाहरण प्रस्तुत करने होंगे। श्री माँ का अभिमत है :

"यदि तुम चाहते हो कि तुम्हारा बच्चा आदर करे तो स्वयम् अपने प्रति आदर भाव रखो तथा सम्मान के उपयुक्त बनो। कभी स्वेच्छाचारी, अत्याचारी, असहिष्णु और क्रोधित मत होओ। बच्चे को शिक्षा देने की योग्यता प्राप्त करने के लिये प्रथम कर्त्तव्य है अपने आप को शिक्षा देना, अपने विषय में सचेतन होना और अपने ऊपर प्रभुत्व स्थापित करना जिससे हम बच्चे के सामने कोई बुरा उदाहरण पेश न करें। एकमात्र उदाहरण ही शिक्षा फलदायी बनती है।" बापू ने भी एक बार छात्र-छात्राओं को सम्बोधित करते हुए कहा था कि "आचार्य तथा अध्यापकगण पुस्तकों के पृष्ठों से चरित्र नहीं सिखा सकते। चरित्र निर्माण तो उनके जीवन से सीखा जाता है।"

वस्तुतः शिक्षक के विचार और कार्य संयुक्त होकर विद्यार्थी के मन में सहयोग, सहिष्णुता, त्याग, प्रेम आदि भावनाओं का पोषण करने में सक्षम होंगे। आज शिक्षक के पार्ट पर मन, वचन और कर्म की एकतानता एवं गत्यात्मकता का अभाव शिक्षा की सबसे बड़ी त्रासदी है। नैतिक जवाबदेही की अपेक्षा यह है कि अध्यापक का व्यक्तित्व व्याधात्मक न हो, सिद्धांत और व्यवहार में दोहरी नीति का अनुगमन न हो। ज्ञान के तत्काल संक्रमण हेतु शिक्षा में इस प्रकार की स्थिति ठोस और उत्तम प्रभाव की वाहिका सिद्ध होगी। अनुकरणीय व्यक्तित्व के रूप में नैतिक जवाबदेही से विभूषित इस प्रकार के शिक्षक का अर्थ होता है – कक्षा में भयरहित शान्ति और अनुशासन का वातावरण, छात्रों में आनन्ददायी स्फूर्ति की विद्यमानता, शिक्षक के प्रति सहज किन्तु सशक्त आदर भाव का अविरल प्रवाह।

अन्ततः शिक्षा उत्पाद नहीं है, निश्चित रूप से शिक्षा संस्कार है जो शिक्षार्थी को उसकी समग्र सम्भावनाओं से संयुक्त करता है और जिसकी सिद्धि शिक्षक की नैतिक जवाबदेही की सुदृढ़ पीठिका पर आधारित है।

■

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org